© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

वाल्मीकिरामायण में उपनिषद् तत्त्वों का चिन्तन

पंकज कुमार शर्मा
(शोधच्छात्र)
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
गंगानाथ झा परिसर, इलाहाबाद

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण को आदिकाव्य, आर्षकाव्य , महाकाव्य आदि नामों से भी जानते हैं। महर्षि वाल्मीकि के करुणसागर से उत्पन्न होता है यह अद्भुत महाकाव्य। सप्तकाण्डात्मक करुणरस प्रधान 24000 श्लोकों से समन्वित इस रामकथा रूपी महाकाव्य में बहुविध विषयों का वर्णन है, जिनमें चन्द्रोदय , सूर्योदय, नदी, पहाड़, जंगल, झरने, नगर, समुद्र, बन्दर, भालू, रीछ, राक्षस, ऋषि, राजा, राजकुमार आदि प्रमुख हैं, किन्तु इन सभी विषयों के साथ एक और महत्त्वपूर्ण विषय का दर्शन होता है वह है औपनिषदिक तात्त्विक चिन्तन परम्परा। वाल्मीकीयरामायण में उपनिषदों का तात्त्विकचिन्तन बहुत्र देखने को मिलता है।योपनिषद् का एक मन्त्र है– **"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"** [1]
इसे वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड में इसप्रकार कहा गया हैं

"अविद्या संसृतेर्हेतुर्विद्या तस्या निवर्तिका ।
तस्मात् यत्नः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।।[2]

अर्थात् अविद्या जन्ममरणरूप संसार का कारण है, और विद्या उसको निवृत्त करने वाली है, अतः मोक्षकामियों को सदा विद्योपार्जन का प्रयत्न करना चाहिए । कर्म और अकर्म के यथार्थ रहस्य को जानने में बड़े से बड़े बुद्धिमान् व्यक्ति भी भूल कर जाते हैं।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
किं ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।[3]

इसीलिए कर्म के रहस्य से अनभिज्ञ, ज्ञान का अभिमानी मनुष्य अपने कर्म को बह्मज्ञान में बाधक समझ लेता है, और वह अपने वर्णाश्रमोचित अवश्य करणीय कर्मों का भी परित्याग कर देता है। परन्तु इसप्रकार के त्याग से उसे त्याग का यथार्थ फल जो कर्म बन्धन से छुटकारा नहीं मिलता ळे

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।[4]

आदर्शवादी राजा राम सर्वदा सत्य का ही पालन करते रहे। राजा राम के समय मे प्रजा भी सत्य का अनुसरण करती थी। श्रीराम ने अपने राज्य में धर्मों के पालन को महत्ता दी थी। धर्म ही सब कुछ था।

उन्हीं के बताये गये मार्ग का प्रजा भी अनुसरण करती थी। क्योंकि राजा की बात मानना प्रजा का कर्त्तव्य था परन्तु राजा भी आदर्शवादी और धर्म परायणता को मानने वाला हो, क्योंकि राजा का जैसा आचरण होता है, वैसा ही प्रजाओं का भी आचरण होता है।

इसीप्रकार ऋषियों ने भी धर्मोपदेश दिया है वे सदा धर्म का आदर करते थे। हमारी भारतीय संस्कृति में जो कुछ उत्तम होता था सब इन्हीं ऋषि–मुनियों की देन थी।

प्राचीन भारत में अपाला, गार्गी, घोषा, मैत्रेयी इत्यादि ऋषिकाओं का औपनिषदिक तात्त्विक चिन्तक के रूप में वर्णन प्राप्त होता है। उसीप्रकार वाल्मीकीय रामायण में भी अत्रि पत्नी अनसूया द्वारा औपनिषदिक उपदेश का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। अनसूया सीता को उपदेश देती हुई कहती हैं–

दुःखशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।[5]

अनसूया सीता को उपदेश देते हुये कहती है कि – हे सीते! पति यदि बुरे स्वभाव का मनमाना बर्ताव करने वाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाव वाली नारियों के लिये श्रेष्ठ देवता के समान है।

तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी।
भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि।।[6]

अनसूया अन्तिम में सीता को उपदेश के वचन कहती हैं– तुम इसीप्रकार अपने इन पतिदेव श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में लगी रहो–सतीधर्म का पालन करो, पति को प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई अपने स्वामी की सहधर्मिणी बनो, इससे तुम्हें सुयश और धर्म दोनों की प्राप्ति होगी।

बाली के मारे जाने पर उनकी पत्नी तारा अत्यन्त शोकविह्वल होकर विलाप कर रही थी, वह बार –बार प्राणत्याग की बात करती थी, उसने कहा अब मैं जीवित नहीं रहूँगी, तब भगवान् श्रीराम ने उन्हे औपनिषदिक चिन्तन की तात्त्विक परम्परा को समझाते हुए आत्मतत्त्व की नित्यता तथा शरीर की निःसारता का उपदेश देते हैं कि –

तं चैव सर्वं सुखदुःखयोगं, लोकोऽब्रवीत् तेन कृतं विधात्रा।
त्रयोऽपि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ।।[7]

अर्थात् विधाता ने ही इस सारे जगत् को सुख दुःख से संयुक्त किया है, यह बात साधारण लोग भी कहते और जानते हैं, तीनों लोको के प्राणी विधाता का उल्लंघन नहीं कर सकते क्योंकि सभी उसके अधीन हैं –

लोकवृत्तमनुष्ठेयं कृतं वा बाष्पमोक्षणम् ।
न कालादुत्तरं किञ्चित् कर्म शक्यमुपासितुम् ।।[8]
नियतिः कारणं लोके नियतिः कर्मसाधनम् ।
नियतिः सर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम् ।।[9]

अर्थात् समय बिताकर कोई भी विहित कर्म नहीं किया जा सकता, क्योकि यदि कोई भी कर्म उचित समय पर न किया जाय तो उन कर्मों का कोई फल नहीं होता, जगत् में नियति (काल) ही सबका कारण है, वही समस्त कर्मों का साधन है, और काल ही समस्त प्राणियों को विभिन्न कर्मों में नियुक्त करने का कारण है, क्योंकि वही सबका प्रवर्तक है। यही बात ईशावास्योपनिषद् के दूसरे मन्त्र में कही गयी है

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ''[10]

रामायण में धर्म को अधर्म से श्रेष्ठ बताया गया है

क्षात्रं धर्ममहं त्यक्ष्ये ह्यधर्मं धर्मसंहितम्।
क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्च सेवितं पापकर्मभिः।।[11]

रामजी जाबालि ऋषि के द्वारा राज्य अभिषेक के लिये मनाने का प्रयास करते हैं, अयोध्या लौटने के लिये प्रेरित करते हैं परन्तु रामजी इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये कहते हैं कि–जो धर्म से युक्त प्रतीत हो रहा है किन्तु वास्तव में अधर्मरूप है। जिसका नीच, क्रूर, लोभी और पापाचारी पुरुषों ने उपयोग किया है, ऐसे क्षत्रियधर्म का जो पिता की आज्ञाभंग करके राज्य ग्रहण ग्रहण करने की बात करता है उसका मैं अवश्य त्याग करूँगा क्योंकि वह न्यायसंगत नहीं है। इन वर्णनों में **'पितृदेवो भव'** आदि उक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

औपनिषदिक तात्त्विक विवेचन विद्या, अविद्या, ब्रह्म, ज्ञान,पाप , पुण्य, धर्म, अधर्म तप आदि का सभी उपनिषदों मे वर्णन प्राप्त होता है। यही वर्ण्य विषय वाल्मीकि रामायण मे भी यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है रामवनगमन के समय जाबालि ऋषि के आग्रह किये जाने पर कि वह अयोध्या आकर राजपद को ग्रहण करे उस पर राम के कुछ वचन इस प्रकार हैं–

नैव लोभान्न मोहाद् वा न चाज्ञानात् तमोऽन्वितः
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः।।[12]

श्रीराम कहते हैं कि सत्यपालन की प्रतिज्ञा करके अब लोभ, मोह अथवा अज्ञान से विवकेशून्य होकर मैं पिता के सत्य की मर्यादा भङ्ग नही करूँगा, अर्थात् वह वनवास जाने के लिये प्रतिज्ञा की है तो अब वह अयोध्या लौटेगे नहीं। इसीप्रकार वह धर्म–अधर्म की बात आगे कहते हैं–

असत्यसंधस्य सतश्चलस्याथिरचेतसः।
नैव देवा न पितरः प्रतीच्छन्तीति नः श्रुतम्।।[13]

श्रीराम जी कहते हैं कि हमने सुना है कि जो अपनी प्रतिज्ञा झूठी करने के कारण धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, उस चञ्चल चित्तवाले के द्वारा दिये हुये हव्य–कव्य को देवता और पितर स्वीकार नहीं करते हैं

कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य तत्।
अनृतं जिह्वा चाहं त्रिविधं कर्मपातकम्।।[14]

मनुष्य अपने शरीर से जो पाप करता है, उसे पहले मन के द्वारा कर्तव्यरूप से निश्चित करता है, फिर जिह्वा की सहायता से उस अनृत(पाप) कर्म को वाणी द्वारा दूसरों से कहता है, तत्पश्चात् औरों के सहयोग से उसे शरीर द्वारा सम्पन्न करता है। इसतरह एक ही पातक कायिक, वाचिक, मानसिक भेद से तीन प्रकार का होता है।

हमारे उपनिषदों में माता–पिता, गुरूजनों एवं अतिथियों को देवतुल्य आदर दिया गया है

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव .....'' 15

वाल्मीकीयरामायण में भी श्रीराम अपने माता–पिता, गुरु आदि के लिए सम्मान वचन कहते हैं,

स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसन्निधौ।
प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत् तदा।।[16]

गुरु के समीप की हुयी मेरी वह प्रतिज्ञा अटल है किसी तरह तोड़ी नही जा सकती, देवी कैकेयी का हृदय हर्ष से खिल उठा था।

इसीप्रकार अन्य श्लोकों मे भी पिता की आज्ञा की उल्लंघन करना रामके लिये असम्भव था इसलिए जाबालि ऋषि को बताते है

सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम्।।[17]

मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ और सत्य की शपथ खाकर पिता के सत्य का पालन स्वीकार कर चुका हूँ, ऐसी स्थिति में मैं अपने पिता के आदेश का किस लिये पालन नहीं करूँ? अर्थात् पिता के आदेश का पालन अवश्य करूँगा।

माता–पिता की सेवा करना कल्याण प्राप्ति का जैसा प्रबल साधन है वैसा न सत्य है, न दान है, न मान है, न पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञ ही हैं। गुरुजनों की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग, धन, धान्य, विद्या, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नही है। माता पिता की सेवा मे लगे रहने वाले महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्वलोक, बह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकों को सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। पिता का पालन करना ही सनातन धर्म है।

राम एक ओर पिता की आज्ञा–पालन को धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं तो दूसरी ओर उन्होंने दशरथ के द्वारा महर्षि जाबालि को अपना याजक नियुक्त किये जाने की निन्दा भी करते हैं।

हमारे उपनिषदों में माता–पिता, गुरुजनों एवं अतिथियों को देवतुल्य आदर दिया गया है–

इसका व्यावहारिक दिग्दर्शन वाल्मीकीयरामायण में राम के चरित्र में दिखायी देता है राम अपनी तीनों माताओं का सम्मान –आदर किसी भी देवी–देवताओं से बढ़कर करते हैं। राम के लिए पिता की आज्ञा किसी ब्रह्म की आज्ञा से भी बढ़कर है राम के जीवन में वशिष्ठ – विश्वामित्र और अगस्त्य–इन तीनों गुरुओं का अत्यन्तमहत्त्वपूर्ण स्थान है। राम ने तैत्तिरीयोपनिषद् के **''आचार्य देवो भव अतिथिदेवो भव''** इस वाक्य को अपने जीवन का चरमलक्ष्य माना है, और उसे अपने समग्रजीवन में चरितार्थ किया है। बाल्यकाल में वेद– वेदाङ्गों की शिक्षा वशिष्ठ से प्राप्त करके दिव्य अस्त्रशस्त्रों की प्राप्ति महर्षि विश्वामित्र से करते हैं । विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा और जनकपुर में धनुषयज्ञ को पूर्ण कर राम अपने सम्पूर्ण जीवन को यज्ञमय बना लेते हैं।

इसीप्रकार अगस्त्य ऋषि से रावणवध के पूर्व कुछ दिव्य अस्त्र शास्त्रों की प्राप्ति तथा आदित्यहृदय स्तोत्र रूपी अमोघमन्त्र को प्राप्त करते हैं, जो रावणविजय में उनके लिए महामन्त्र होता है ।

अतिथियों की सेवा श्रीराम के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड में श्रीराम कहते हैं कि –

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च
भूतानुकम्पां प्रियवादितां च,
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च
पन्थानमाहुस्त्रिदिवसस्य सन्तः ।।[18]

अर्थात् सत्य, धर्म, पराक्रम, समस्त प्राणियों पर दया, सबसे प्रियवचन बोलना तथा देवताओं, अतिथियों, तथा ब्राह्मणों की पूजा करना इन सबको साधुपुरुषों ने स्वर्गलोक का मार्ग बताया है। उपनिषद् का एक महत्त्वपूर्ण वाक्य है

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"[19]

इस वाक्य का सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण में दिग्दर्शन प्राप्त होता है अयोध्याकाण्ड में श्रीराम कहते हैं –

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि ।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत् ततः ।।[20]

अर्थात् पृथ्वी, कीर्ति, यश और लक्ष्मी– ये सब सत्यवादी पुरुष को पाने की इच्छा रखती हैं, और शिष्ट पुरुष सत्य का ही अनुसरण करते हैं अतः मनुष्य को सदा सत्य का ही सेवन करना चाहिए ।
इतना ही नहीं सत्य की महत्ता का प्रतिपादन यथावसर रामायण में सर्वत्र देखने को मिलता है तद्यथा

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ।
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे ।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परं गच्छति चाक्षयम् ।।
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ।।
दत्तमिष्टं हुतं चैव तरतानि च तपांसि च ।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानाः तस्मात् सत्यपरो भवेत् ।।[21]

अर्थात् सत्य का पालन ही राजाओं का दयाप्रधान धर्म है, सनातन आचार है , अतः राज्य सत्यस्वरूप है, सत्य में ही सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है, ऋषियों और देवताओं ने सदा सत्य का ही आदर किया है, इस लोक में सत्यवादी मनुष्य अक्षय परमधाम में जाता है संसार में सत्य ही धर्म की पराकाष्ठा है, और वही सब का मूल कहा जाता है , जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई परमपद नहीं है । दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद–इन सबका आधार सत्य ही है । इसलिए सबको सत्यपराण होना चाहिए ।

इसप्रकार वाल्मीकीय रामायण में बहुधा उपनिषदों के तात्त्विक विचारों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है । कहीं आत्मिक विवेचन, कहीं सत्य की महत्ता, कहीं माता– पिता – गुरुजन एवं अतिथियों की सेवा तो कहीं धर्म का अनुष्ठान इसप्रकार सभी उपनिषदों का सारतत्त्व समग्र रामायण में दृष्टिगोचर होता है।
।। इति ।।

सन्दर्भ :

1. ईशावास्योपनिषद् –15
2. वा. रा. अयो. 4.25.34
3. गीता (4/16)
4.गीता 18/6
5.वा. रा. अयो. 117/24
6.वा. रा. अयो. 117/29
7. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड 24/42
8. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड 25/3
9. वा .रा. किष्किन्धाकाण्ड 25/4
10. ईशावास्योपनिषद् –2
11.वा. रा. अयो. 109/20
12.वा. रा. अयो. 109/17
13.वा. रा. अयो. 109/18
14.वा. रा. अयो. 109/19
15. तैत्तिरीयोपनिषद्
16.वा. रा. अयो. 109/25
17.वा. रा. अयो. 109/16
18. वा. रा. अयो. 109/17
19. बृहदारण्यकोपनिषद्
20.वा .रा. अयो. 19/23
21. वा .रा. अयो. 109/10–13

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ईशादि नौ उपनिषद्–गीताप्रेस, गोरखपुर
2. वाल्मीकीय रामायण (भाग–1,2)–गीताप्रेस, गोरखपुर
3. रामायण का आचार दर्शन–अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव –भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–2000
4. रामकथा–कामिल बुल्के–हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय–1999
5. रामायण–मीमांसा–स्वामी करपात्री जी–राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन, मथुरा–2001